खंड-2
उपखंड-7

प्राचीन भारत में मूर्ति कला का विकास
(Development of Sculpture in Ancient India)

प्राचीन भारत में मूर्तिकला का विकास अन्य ललित कलाओं; जैसे- स्थापत्य तथा चित्रकला के साथ ही हुआ दिखता है। प्राचीन भारत में तीनों ही कलाओं के विकास के उत्कृष्ट उदाहरण प्राप्त होते हैं। ये तीनों कलाएं एक-दूसरे से इस रूप में अभिन्न हैं कि इनमें एक के बिना दूसरे की सुदंरता की परिकल्पना भी नहीं हो सकती है। भारत में मूर्तिकला का विकास अनेक रूपों में हुआ है जैसे कि मूर्तिकला, धातु मूर्तिकला अथवा पाषाण मूर्तिकला। ये मूर्तियां भित्तिचित्र की भी अंग हो सकती हैं अथवा इसकी स्थापना स्वतंत्र रूप से भी हो सकती है। प्राचीन भारत में मूर्तिकला के विकास को उसके कालक्रम के अनुसार समझना व्यावहारिक प्रतीक होता है।

प्रागैतिहासिक से पूर्व मौर्ययुगीन मूर्तिकला

भारत में मूर्तिकला का प्राचीनतम साक्ष्य उच्च पुरापाषाण काल से दिखाई देता है। इस काल के बेलन घाटी में स्थित लोहंदानाले से अस्थि निर्मित मातृदेवी की मूर्ति प्राप्त हुई है। इसके पश्चात् के काल में अनेकानेक पाषाण मूर्तियों की प्राप्ति हुई है। खासकर हड़प्पा सभ्यता की खुदाई में मोहनजोदड़ो तथा हड़प्पा की खुदाई से बहुत सारी पाषाण मूर्तियों की प्राप्ति हुई है। यद्यपि ये मूर्तियाँ पूर्ण रूप से विकसित नहीं हैं, तथापि प्रारंभिक मूर्तिकला की अच्छी उदाहरण हैं। मोहनजोदड़ो से प्राप्त प्रस्तर की योगी अथवा पुरोहित की मूर्ति तथा काँसे से निर्मित एक नाचती हुई लड़की की मूर्ति विशेष रूप से उल्लेखनीय है। मोहनजोदड़ो तथा हड़प्पा से प्राप्त पुरूषों की भव्य प्रतिमाओं तथा मूर्तियों को देखने से अनुमान होता है कि सिंधु घाटी सभ्यता पर सुमेरी तथा भारतीय प्रभाव था।

सैंधव मूर्तिकला के अंतर्गत मनुष्यों तथा पशुओं, दोनों की मूर्तियाँ निर्मित की गई हैं। मानव मूर्तियाँ अधिकतम महिलाओं की हैं। ये मूर्तियाँ पुरूष मूर्तियों की तुलना में अधिक सुघड़ तथा प्रभावोत्पादक हैं। यहाँ पर मानव मूर्तियों की तुलना में कहीं अधिक पशुओं की मूर्तियाँ भी पायी गई हैं तथा ये कला की दृष्टि से उच्च कोटि की भी हैं। इन मूर्तियों में कूबड़ वाले बैल की मूर्तियाँ अत्यधिक संख्या में पायी गई हैं। अन्य पशुओं में हाथी, गैंडे, बन्दर, सुअर, भालू आदि की मूर्तियाँ निर्मित हैं।

मौर्यकालीन मूर्तिकला

मौर्यकाल में मूर्तिकला में पशुओं की आकृति बेहतरीन रूप में अभिव्यक्त हुई है। विशेषकर, पशुओं में भी चार पशुओं को प्रतिनिधित्व मिला है, यथा- सिंह, सांड, हाथी और घोड़े। विशेषकर रामपुरवा का बैल एक अनुपम कृति है। वह बहुत ही प्रसन्नचित मुद्रा में खड़ा है। पशुओं की सजीव आकृति को देखते हुए एक विवाद उभरकर आया है कि सम्भवतः मौर्यकला कहीं बाहर से आयातित है क्योंकि अचानक इतनी विकसित अवस्था में ये मूर्तियाँ कैसे बन सकती हैं क्योंकि इससे पूर्व कोई सुडौल मूर्ति नहीं मिली है। किंतु अब ऐसा माना जाने लगा है कि मौर्यकला, हड़प्पाई मूर्तिकला के क्रमिक विकास को ही दर्शाती है। वस्तुतः हड़प्पा काल एवं मौर्यकाल के बीच भी मूर्तियों का निर्माण होता रहा था, किंतु संभवतः यह मूर्तियाँ शीघ्र नष्ट होने वाली सामग्रियों; यथा- लकड़ी से निर्मित थीं, इसलिए ये शीघ्र नष्ट हो गयीं। यही वजह है कि वर्तमान में उनका अवशेष नहीं मिलता।

मौर्यकाल में हमें लोक कला के भी उदाहरण मिलते हैं। इस काल में पत्थर की निर्मित यक्ष-यक्षिणी की मूर्तियाँ बड़ी संख्या में मिली हैं। ये खुले आकाश के नीचे खड़ी हैं। ये मूर्तियाँ इस प्रकार हैं- परखम के यक्ष, दीदारगंज की चामरग्राहिणी तथा बेसनगर की यक्षिणी।

मौर्योत्तरकालीन मूर्तिकला

इस काल में मूर्तिकला की तीन स्वतंत्र शैलियाँ विकसित हुईं; यथा- गांधार कला, मथुरा कला तथा अमरावती कला। ये तीनों शैलियाँ अपने-अपने दृष्टिकोण से उत्कृष्ट थीं तथा भारतीय शिल्प कला में इन सभी को श्रेष्ठ स्थान प्रदान किया गया है।

■ गांधार मूर्तिकला

भारतीय मूर्तिकला के इतिहास में गांधार मूर्तिकला को विशेष महत्व प्राप्त है क्योंकि इसने भारतीय मूर्तिकला को एक नई दिशा दी।

गांधार मूर्तिकला का केन्द्र उत्तर-पश्चिम में तक्षशिला एवं आस-पास का क्षेत्र रहा है। इसका विकास प्रायः दो चरणों में देखने को मिलता है- प्रथम चरण, दूसरी सदी तक और दूसरा चरण, दूसरी सदी और 7वीं सदी के बीच। सबसे दिलचस्प तथ्य यह है कि गांधार मूर्तिकला का स्वरूप समन्वयवादी है। यह कई शैलियों के मिश्रण को दर्शाता है-

- **यूनानी शैली का प्रभाव**- गांधार कला में मूर्तियों के शरीर की बनावट पर यूनानी शैली का प्रभाव है। इसमें मूर्तियों का बलिष्ठ शरीर एवं माँसपेशियों का यथार्थवादी चित्रण हुआ है। यूनानी कला में अपोलो देवता के मुख का बड़ा ही भव्य चित्रण देखने को मिलता है। आगे गांधार कला में अपोलो देवता के ही मॉडल पर बुद्ध एवं बोधिसत्वों की मूर्तियाँ बनी हैं।
- **रोमन शैली का प्रभाव**- दूसरी तरफ, रोमन प्रभाव में गांधार शैली में वेशभूषा, पोशाक, आभूषण आदि के चित्रण पर विशेष बल दिया गया। मूर्तियों को भव्य चोगा पहनाया जाता, मूर्ति के मस्तक पर राजमुकुट का चित्रण किया जाता तथा कान में कुण्डल एवं शरीर के आभूषण के अंकन पर विशेष बल दिया जाता था।

- **मध्य-एशियाई प्रभाव**- मध्य एशिया में शकों एवं पार्थियन शासकों के प्रभाव में भी गांधार शैली में बदलाव देखा गया। सामान्यतः मूर्ति-निर्माण में कच्चे माल अथवा सामग्री के रूप में गहरे नीले पत्थर अथवा काले पत्थर का प्रयोग किया जाता था, परन्तु अब चूना प्लास्टर का भी प्रयोग किया जाने लगा। उसी प्रकार, पार्थियन शासकों के प्रभाव में मूर्तियों को तिकोनी टोपी पहनायी जाने लगी। इतना ही नहीं, मूर्तिकला में अग्नि रेखा का भी अंकन होने लगा। इस पर हम ईरानी प्रभाव मान सकते हैं।
- **भारतीय प्रभाव**- भारतीय प्रभाव में मूर्ति के मुख पर आध्यात्मिकता दर्शायी जाने लगी। गांधार मूर्तिकला शरीर से भले ही यूनानी-रोमन थी, परन्तु आत्मा से भारतीय ही बनी रही।

प्रश्न- गांधार मूर्तिकला रोमन वासियों की उतनी ही ऋणी थी, जितनी कि वह यूनानियों की थी। स्पष्ट कीजिए।

उत्तर- गांधार मूर्तिकला, भारतीय मूर्तिकला के इतिहास में एक महत्वपूर्ण विकास क्रम को दर्शाती है। यह उत्तर-पश्चिम में तक्षशिला एवं आस-पास के क्षेत्रों में विकसित हुयी थी क्योंकि ये क्षेत्र भारतीय एवं यूनानी-रोमन संस्कृति के मिलन स्थल रहे थे। गांधार मूर्तिकला अपनी शारीरिक बनावट में मुख्यतः यूनानी तत्वों से, जबकि वेश-भूषा एवं साज-सज्जा में रोमन तत्वों से प्रभावित थी। वहीं दूसरी तरफ यह अपनी आत्मा से भारतीय थी।

यूनान में देवताओं को मानव रूप में प्रस्तुत किया जाने लगा था। यूनानी-रोमन कला में देवताओं की मूर्तियां निर्मित की जाती थीं, इसलिये भारत की भूमि पर भी यूनानी-रोमन प्रभाव से देवताओं की मूर्तियां मानव रूप में बनायी जाने लगीं। इसे 'गांधार कला' का नाम दिया गया। गांधार कला के अंतर्गत बुद्ध एवं बोधिसत्व की मूर्तियां निर्मित की गईं। इस कला के अंतर्गत मूर्ति की शारीरिक बनावट यथार्थ रूप में प्रस्तुत की गयी। उदाहरण के लिए, माँसपेशियां, केश विन्यास तथा शरीर के विभिन्न अंगों के यथार्थ चित्रण, इन सभी पर सीधा यूनानी प्रभाव था। बुद्ध को यूनानी देवता अपोलो की तरह प्रस्तुत किया गया। किंतु बुद्ध के शरीर पर कपड़े एवं आभूषण रोमन शैली से प्रभावित थे। रोमन शैली में पारदर्शी कपड़े, उनकी सिलवटें तथा मूर्ति के सिर पर राजमुकुट एवं शरीर के अन्य आभूषण को दर्शाया गया था। फिर आगे भारतीय प्रभाव में मूर्ति के मुख पर आध्यात्मिकता को भी प्रदर्शित किया जाने लगा।

अभ्यास प्रश्नः गांधाराई कला में मध्य एशियाई एवं यूनानी-बैक्ट्रियाई तत्वों को उजागर कीजिए। (UPSC-2019, 150 शब्द)

■ मथुरा एवं गांधार कला शैली में अन्तर के बिन्दु

1. गांधार कला का मौलिक क्षेत्र उत्तर-पश्चिम में तक्षशिला एवं आस पास का क्षेत्र रहा था, जबकि मथुरा कला का क्षेत्र मथुरा, आगरा और आस-पास का क्षेत्र रहा था।
2. मथुरा कला ब्राह्मण, बौद्ध और जैन सभी पंथों से सम्बद्ध

थी, तो गांधार कला मुख्यत: उत्तर-पश्चिम में बौद्ध पंथ से सम्बद्ध रही थी।

3. गांधार कला में कच्चे माल अथवा सामग्री के रूप में गहरे नीले पत्थर अथवा काले पत्थर का प्रयोग होता था, तो मथुरा कला में लाल पत्थर का।

4. गांधार कला का दृष्टिकोण यथार्थवादी था, तो मथुरा कला का आदर्शवादी। दूसरे शब्दों में, गांधार कला में मूर्ति के शरीर की बनावट, कपड़ों की सिलवटें आदि का बड़ा ही यथार्थवादी चित्रण किया गया है, जबकि मथुरा कला में शरीर की बनावट को महत्व नहीं दिया गया, कपड़े भी पारदर्शी एवं शरीर से चिपके हुए दिखाए जाते हैं। इसमें केवल मूर्ति के मुख पर आध्यात्मिकता दर्शाने पर विशेष बल दिया जाता है। मूर्तियाँ प्राय: विचारमग्न दिखती हैं।

■ **अमरावती शैली**

यह शैली सातवाहनों तथा उसके उत्तराधिकारी इक्ष्वाकुओं के अधीन अमरावती, नागार्जुनकोंड एवं आस-पास के क्षेत्रों में विकसित हुई। इसमें कच्चे माल अथवा सामग्री के रूप में संगमरमर का प्रयोग होता था तथा बड़े ही भव्य प्रकार की मूर्तियाँ बनाई जाती थीं।

जहाँ मथुरा शैली की मूर्तियों में आध्यात्मिक बातों को अधिक महत्व दिया गया है, वहीं अमरावती शैली में मूर्तियों के निर्माण में सांसारिक बातों को विशेष महत्व दिया गया है। अमरावती शैली का मुख्य बल ऐन्द्रिक सुखों पर है अर्थात् मूर्तियों में एक प्रकार के ऐश्वर्य का प्रदर्शन हुआ है। वस्तुत: इस काल तक दक्षिण भारत के समाज पर रोमन व्यापार का प्रभाव उभरकर आया। अत: सुख-समृद्धि में वृद्धि के कारण ऐन्द्रिक सुख की ओर आकर्षण बढ़ गया।

गुप्तकालीन मूर्तिकला

गुप्तकाल में मूर्ति कला ने क्लासिकल मानदंड ग्रहण किया अर्थात् इस काल में मूर्तिकला में अत्यधिक प्रौढ़ता आयी तथा मूर्तिकला ने ऐसे मानदंड विकसित किए, जिन्होंने न केवल भारत के अन्दर, अपितु भारतीय उपमहाद्वीप के बाहर की मूर्तिकला पर भी अपना प्रभाव छोड़ा।

इस काल में मूर्तिकला की दो प्रचलित शैलियाँ, मथुरा कला एवं गांधार कला इन दोनों के मिश्रण से सारनाथ शैली का विकास हुआ। इस शैली में बेहतरीन प्रकार की मूर्तियों का निर्माण हुआ। एक तरफ गांधार शैली के प्रभाव में शरीर की बेहतर बनावट को महत्व दिया गया, तो दूसरी तरफ मथुरा शैली के प्रभाव में मूर्ति के मुख पर आध्यात्मिकता भी दर्शायी गई।

गुप्तकालीन मूर्ति में मंद आभामंडल का विकास दिखता है तथा मूर्ति के मुख पर विभिन्न प्रकार की भाव-भंगिमाओं को दर्शाया गया है। कुषाणकालीन मूर्तियाँ नग्न रूप में भी दर्शायी जाती थीं, परन्तु गुप्तकालीन मूर्तियों को उचित वस्त्रों से ढका गया है। धातु से निर्मित मूर्ति के निर्माण में भी गुप्त काल विकसित अवस्था में दिखता है। उदाहरण के लिए, बिहार के सुल्तानगंज से एक टन की बुद्ध की काँसे की मूर्ति प्राप्त हुई है।

गुप्तोत्तरकालीन मूर्तिकला

■ **पल्लव कला**

पल्लवों के अधीन बड़ी संख्या में पहाड़ों को काटकर मंदिर बनाए गए थे। इन मंदिरों में देवताओं की मूर्तियाँ भी स्थापित की गईं, जो काफी भव्य प्रतीत होती हैं तथा बेहतर मूर्तिकला का उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। उदाहरण के लिए,

नरसिंहवर्मन प्रथम के द्वारा निर्मित रथ मंदिर में अनेक सुंदर मूर्तियाँ निर्मित की गई हैं। द्रौपदी रथ में दुर्गा की मूर्ति है तथा अर्जुन रथ में शंकर की मूर्ति, उसी प्रकार धर्मराज रथ में स्वयं नरसिंहवर्मन प्रथम की मूर्तियाँ स्थापित हैं।

- **चोल मूर्तिकला**

ऐसा माना जाता है कि पल्लव कालीन कला ने चोल काल तक आकर क्लासिकल मानदंड ग्रहण किए। उसी प्रकार, मूर्तिकला भी इसका अपवाद नहीं है। चोल काल में बड़ी संख्या में मंदिर बनाए गए तथा उसमें मूर्तियाँ स्थापित की गईं। उदाहरण के लिए, आरंभिक मंदिर में हम नर्तमलाई के विजयालय चोलेश्वर मंदिर की चर्चा कर सकते हैं। इसमें प्रस्तर की भव्य मूर्ति स्थापित की गई थी। चूँकि चोल शासक शैव धर्म के उपासक थे, इसलिए इस काल के मंदिरों में, विशेषकर शिव की मूर्तियाँ मिलती हैं। साथ ही, राजा की मूर्तियाँ भी बनती थीं। राजराज प्रथम का बृहदेश्वर मंदिर मूर्ति निर्माण कला की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण चरण को व्यक्त करता है।

किंतु चोल कालीन मूर्तिकला विशेषकर ताँबे एवं काँसे की मूर्तियों के निर्माण के लिए जानी जाती हैं। बड़ी संख्या में देवताओं, राजाओं एवं दाताओं की मूर्तियाँ बनाई गईं। सबसे बढ़कर, शिव नटराज की मूर्ति कांस्य कला का बेहतर उदाहरण प्रस्तुत करती है। जहाँ प्रस्तर की मूर्ति मंदिर में निर्मित हुई, वहीं काँसे की मूर्ति मंदिर से बाहर मिलती है।

- **पालकालीन मूर्तिकला**

यह मूर्तिकला 8वीं, 9वीं सदी में पाल शासकों के अधीन बंगाल तथा पूर्वी भारत में विकसित हुई। ये मूर्तियाँ काले बेसाल्ट पत्थर की बनाई गईं हैं। इस काल की मूर्तिकला से जुड़े हुए दो महान कलाकारों को संरक्षण मिला था, ये कलाकार थे– धीमन तथा विठपाल।

■■■